

॥ श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ॥

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

2/6 (श्लोक 5-15), शनिवार, 07 अक्टूबर 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: <https://youtu.be/3s5iAkUco6A>

कर्म संन्यास का महत्त्व

प्रार्थना, दीप प्रज्वलन एवं गुरु वन्दना से आज के विवेचन सत्र का प्रारम्भ हुआ।

अट्टारहवें अध्याय तक आते-आते ऐसा प्रतीत होता है कि मानों नौका में बैठे हैं और उससे उतरने का समय आ गया हो। यह सम्भव है कि नौका से प्यार हो जाए और जब उतरने का समय आए तो उस नौका से उतरने का मन न करे, लेकिन नौका से उतरने पर ही किनारा मिलेगा। ऐसा ही इस अध्याय का महत्त्व है।

कहीं न कहीं छोटा सा दुःख नजर आने लगता है कि यह सफर अब समाप्त होने वाला है लेकिन उतरना तो पड़ेगा ही। जिसने जीवन में उतरना सीख लिया उसका जीवन धन्य हो जाता है। उतरने का अर्थ है- अहङ्क यानी अहङ्कार का विसर्जन, कर्म संन्यास। भगवान यहाँ पर अर्जुन को कर्म संन्यास और त्याग में क्या अन्तर होता है, इस विषय का उत्तर दे रहे हैं।

18.5

यज्ञदानतपःकर्म, न त्याज्यं(ङ्) कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं(न्) तपश्चैव, पावनानि मनीषिणाम्॥18.5॥

यज्ञ, दान और तपरूप कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिये, (प्रत्युत) उनको तो करना ही चाहिये (क्योंकि) यज्ञ, दान और तप - ये तीनों ही (कर्म) मनीषियों को पवित्र करनेवाले हैं।

विवेचन- भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! कुछ ऐसे कार्य हैं जो व्यक्ति को हमेशा करने चाहिए। कर्म में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। शास्त्रों में जिन कर्मों को करने के लिए कहा गया है, ऐसे कर्म बुद्धि के कहने से और बिना आसक्ति और फल की इच्छा के किए जाने चाहिए। यज्ञ, तप और दान जैसे कर्म; विकर्म से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और अकर्म कर्म से भी महत्त्वपूर्ण हैं।

18.6

एतान्यपि तु कर्माणि, सङ्गं (न) त्यक्त्वा फलानि च। कर्तव्यानीति मे पार्थ, निश्चितं (म्) मतमुत्तमम्॥18.6॥

हे पार्थ ! इन (यज्ञ, दान और तपस्वरूप) कर्मों को तथा (दूसरे) भी (कर्मों को) आसक्ति और फलों की इच्छा का त्याग करके करना चाहिये - यह मेरा निश्चित किया हुआ उत्तम मत है।

विवेचन- कर्म वह है जो बुद्धि करना चाहती है पर मन नहीं करना चाहता। विकर्म वह है जो मन करना चाहता है पर बुद्धि नहीं करना चाहती और अकर्म वह है जिसे करने के बाद व्यक्ति उसके फल की इच्छा नहीं रखता।

जैसे बुद्धि कहती है कि सुबह उठना चाहिए और मन आलस्य कर जाता है, वह कर्म है। हर वह कर्म जो हमारे श्रेयस के लिए है वह कर्म है और जो हमें विकृति की तरफ ले जाता है वह विकर्म है।

दुःख-सुख, योग्य-अयोग्य, कुशल और अकुशल इन सब में समता के भाव से अपेक्षाओं को समाप्त कर देने से अकर्म पैदा होता है। कर्म विकर्म से महत्त्वपूर्ण है और अकर्म कर्म से महत्त्वपूर्ण है।

18.7

नियतस्य तु सन्न्यासः(ख), कर्मणो नोपपद्यते। मोहात्तस्य परित्यागः (स), तामसः(फ) परिकीर्तितः॥18.7॥

नियत कर्म का तो त्याग करना उचित नहीं है। उसका मोहपूर्वक त्याग करना तामस कहा गया है।

विवेचन-

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥

अर्जुन कहते हैं, हे कृष्ण! मैं विजय, राज्य या सुख की कामना नहीं करता। राज्य, सुख, या यहाँ तक जीवन भी किसी लाभ का नहीं। यह कैसा सुख? सुख का त्याग करना होगा नहीं तो जिन्दगी भर काँटा रहेगा।

कर्म के तत्त्व को जानना चाहिए और अकर्म के तत्त्व को भी जानना चाहिए तथा विकर्म के तत्त्व को भी जानना चाहिए क्योंकि कर्म की गति गहन होती है।

"गहना कर्मणो गतिः"।

कर्म के त्याग भी तीन प्रकार के कहे गये हैं।

सात्त्विक, राजसी एवम् तामसी त्याग। मोहवश कर्म को त्याग देना तामस त्याग कहलाता है। तामसी उठ नहीं सकता और राजसी सो नहीं सकता।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥2.5॥

मोह में आकर यह सोचना कि गुरुजनों, सम्बन्धियों के साथ कैसे लड़ूँगा तो वह तामस त्याग होगा। जो तामसी प्रवृत्ति से भर जाते हैं, आलस्य से भर जाते हैं और जो राजसी प्रवृत्ति से भर जाते हैं; उनमें हमेशा यह चिन्तन चलता रहता है कि सुबह उठकर क्या करना है?

आगे बढ़ना और अधिक धन कमाना, यह हमेशा उनके मस्तिष्क में चलता रहता है, इसलिए हमें सात्त्विक त्याग, राजसी त्याग और तामसी त्याग के अन्तर को समझना होगा। बहुत अन्धेरा है और कुछ भी दिखाई नहीं देता तो आँखों को दोष नहीं दिया जा सकता। न्यायाधीश और हत्यारा दोनों ही हत्या करते हैं किन्तु हत्यारा अपने स्वार्थ के लिए हत्या करता है और न्यायाधीश इस हत्यारे से बाकी जनों को बचाने के लिए हत्या करता है। आतङ्कवादी को मारना सैनिक का कर्तव्य है। भगवद्गीता पराक्रम सिखाती है। यह सिखाती है, भागो नहीं, जागो। मोह के कारण त्याग तामस त्याग कहलाता है।

बड़ी दूर जाना है और पैर थक गए हैं तो पैरों को दोष नहीं दिया जा सकता। बहुत भूख लगी है और खाना अत्यन्त गरम है तो जिह्वा को दोष नहीं दिया जा सकता। अगर माथा दुख रहा है तो सिर को दोष नहीं दिया जा सकता। नियत कर्म का त्याग नहीं किया जा सकता। कर्म से मुँह मोड़ना तामसी त्याग है। विवेकपूर्ण निर्णय लेना होगा। अन्तर्मुखी होकर यह सोचना होगा कि क्या सही है? कर्म को अनदेखा करना तामसी त्याग है।

18.8

दुःखमित्येव यत्कर्म, कायक्लेशभयात्पजेत्। स कृत्वा राजसं(न) त्यागं(न), नैव त्यागफलं(म्) लभेत् ॥18.8॥

जो कुछ कर्म है, वह दुःखरूप ही है - ऐसा (समझकर) कोई शारीरिक परिश्रम के भय से (उसका) त्याग कर दे, (तो) वह राजस त्याग करके भी त्याग के फल को नहीं पाता।

विवेचन- भगवान इस श्लोक में राजसी त्याग की बात करते हैं। ग्वाला यह सोचकर कि गाय लात मार देगी या फिर सीङ्ग मार देगी, कर्म का त्याग नहीं कर सकता। गुलाब चाहिए तो काँटे का दर्द भी सहना पड़ेगा। भोजन करना है तो रसोई की ऊष्णता को भी सहन करना होगा। अगर घी को अग्नि पर रखें रहे और वह घी उफन कर बर्तन से बाहर आ जाए तो वह यज्ञ नहीं कहलाएगा।

इसी तरह से कोई व्यक्ति नदी में नहा रहा है और नदी में डूब जाए तो वह जल समाधि नहीं कहला सकती। उस कर्म को करने के लिए तप करना पड़ता है और उस मेहनत व तप की कोशिश न करना, ऐसा त्याग राजसी त्याग कहलाता है। इससे कोई फल प्राप्त होने की सम्भावना नहीं होती।

18.9

कार्यमित्येव यत्कर्म, नियतं(ङ्) क्रियतेऽर्जुन। सङ्गं(न) त्यक्त्वा फलं(ञ्) चैव, स त्यागः(स) सात्त्विको मतः ॥18.9॥

हे अर्जुन ! 'केवल कर्तव्य मात्र करना है' -- ऐसा (समझकर) जो कर्म आसक्ति और फलेच्छा का त्याग करके किया जाता है, वही सात्त्विक त्याग माना गया है।

विवेचन- भगवान कहते हैं, मेरा मत है कि सात्त्विक त्याग समझ और ज्ञान की परिपक्वता से आता है। फल का त्याग एवम् आसक्ति का त्याग सात्त्विक त्याग है। जैसे आम को खाते समय छिलका व गुठली फेंक दी जाती है, ऐसे ही कर्म को करने के बाद उसका फल और आसक्ति त्याग देनी चाहिए। अगर व्यक्ति सात्त्विक त्याग करना चाहता है तो वह कर्म के फल और उसके साथ को त्याग करके सात्त्विक त्याग कर सकता है।

बीज अगर शिशिर में गिरे और सूर्य की दाह से बीज जल जाए तो उसके अन्दर का वृक्ष भी जल जाता है, वैसे ही कर्म फल का त्याग करने से कर्म का अच्छा या बुरा दोनों तरह के फल समाप्त हो जाते हैं। 'मैंने किया' ऐसा जानकर उसके फल का अधिकारी बनना पड़ता है और अगर उसके फल की अपेक्षा ही न की जाए तो उसका कोई भी फल नहीं मिलता। जब तक फल की इच्छा रहेगी, पतन होगा। पतन से बचने के लिए फल को त्याग देना बहुत आवश्यक है। कई बार पति और पत्नी में भी इस तरह का अहङ्कार रहता है कि मेरी वजह से निर्वाह चल रहा है, परिवार चल रहा है यह भाव अहङ्कार को जन्म देता है।

छिपकली को छत पर चिपके हुए इस बात का अहङ्कार रहता है कि शायद छत उसी के साथ की वजह से ही बची हुई है। एक प्रयोग अपने ऊपर करके देखें। सुबह नहाते वक्त बाल्टी को लबालब भर लीजिए। उसमें अपना हाथ डालिए और फिर हाथ बाहर निकाल लीजिए। मुट्ठी भर हाथ अन्दर ले जाने से थोड़ी देर के लिए उसमें गड्ढा रहेगा। कुछ बून्दें बाहर निकल जाएँगी, पर फिर स्वयं ही जल उसका स्थान ले लेगा और रिक्तता समाप्त हो जाएगी। यही हमारा आस्तित्व है। कर्म में आसक्ति रखने से ऐसा भाव आता है कि जैसे आपका स्थान कोई भी ले ही नहीं सकता। इसीलिए कर्म के साथ आसक्ति का त्याग करें। यही सात्त्विक त्याग कहलाएगा।

18.10

न द्वेष्ट्यकुशलं(ङ) कर्म, कुशले नानुषज्जते। त्यागी सत्त्वसमाविष्टो, मेधावी छिन्नसंशयः॥18.10॥

(जो) अकुशल कर्म से द्वेष नहीं करता (और) कुशल कर्म में आसक्त नहीं होता, (वह) त्यागी, बुद्धिमान्, सन्देह रहित (और) अपने स्वरूप में स्थित है।

विवेचन- बाल संस्कार शिविर में स्वामी जी महाविद्यालय के विद्यार्थियों को ले जाते थे। पहले ही दिन सभी विद्यार्थियों को पाँचों दिनों की कार्यप्रणाली के अनुसार कार्य सौंप दिए जाते थे। किसी के हिस्से में देवालय की स्वच्छता, पूजा अर्चना आती थी और किसी के हिस्से में शौचालय की स्वच्छता का कार्य आता था।

स्वामी जी इस बात पर सभी विद्यार्थियों को समझाते थे कि कोई भी कार्य कुशल या अकुशल नहीं होता। कोई भी कार्य द्वेष या आसक्ति से नहीं किया जाना चाहिए। एक परिवार में दो बहुएँ थीं। बड़ी बहू गृहस्थ के सारे कार्यों को देखती थी व छोटी बहू इंजीनियर थी और किसी बड़ी फर्म में काम करती थी। उसको इस बात का अहङ्कार था कि वह बहुत कुशल है और प्रत्येक व्यक्ति उससे बात करना चाहता है और उसकी सलाह लेता है। एक दिन उसके बच्चे के स्कूल से उसके लिए बुलावा आया। स्कूल की प्रधानाचार्य ने उसके बेटे के बारे में बात करने के लिए बुलाया था। जब वह अपने बच्चों के स्कूल पहुँची और प्रधानाचार्य से मिली तो उन्होंने बच्चे की बहुत तारीफ की। कहा कि आपका बेटा बहुत ही संस्कारी है। अपने सभी अध्यापकों का बहुत आदर करता है। प्रार्थना के समय सुवचन बोलता है और साथ में संस्कृत के श्लोक भी उसे कण्ठस्थ हैं। हमारी परम्परा के अनुसार ऐसे मेधावी बच्चों के अभिभावकों को छब्बीस जनवरी के दिन देश के राष्ट्रीय ध्वज को लहराने का मौका दिया जाता है।

प्रधानाचार्य की इस बात को सुनकर उसने कहा कि बच्चों का काम देखना मेरी जेठानी का कार्य है और वह ही इस मौके पर मेरे साथ आएँगी और परम्परा अनुसार इस भूमिका को निभाएँगी। कुशल या अकुशल कार्य नहीं होता। एक गृहिणी का कार्य भी अत्यन्त सम्माननीय है क्योंकि वह परिवार के सारे वृद्ध और बच्चों का ध्यान रखती है। वह अपने आस्तित्व से ऊपर उठकर परिवार में सबका ध्यान रखती है। उनका खाना-पीना सब कुछ उसी पर ही निर्भर होता है। इसलिए कोई भी कार्य कुशल या अकुशल नहीं होता।

कुशल कार्य जानकर किसी भी कर्म में आसक्ति पैदा होती है और अकुशल कार्य जानकर उसमें द्वेष पैदा होता है जो कि असन्तुलन पैदा करता है।

18.11

न हि देहभृता शक्यं(न्), त्यक्तुं(ङ) कर्माण्यशेषतः। यस्तु कर्मफलत्यागी, स त्यागीत्यभिधीयते॥18.11॥

कारण कि देहधारी मनुष्य के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का त्याग करना सम्भव नहीं है। इसलिये जो कर्मफल का त्यागी है, वही त्यागी है - ऐसा कहा जाता है।

विवेचन- जीवन को समत्व से देखना आवश्यक है। हाथ, पैर, आँखें, मुँह हर शरीर के अङ्ग का अपना महत्त्व है। केवल बुद्धि का महत्त्व नहीं होता, उसी को ही सम्मानित नहीं किया जा सकता। शरीर के सभी अङ्गों का कर्तव्य है कि एक दूसरे से समत्व बनाएँ। काँटा पैर में चुभता है तो आँखों से आँसू निकल आते हैं। इसी तरह पत्थर पर अगर नाखून रगड़ जाए तो मुँह से चीख निकल जाती है। समग्रता बहुत आवश्यक है।

कुछ भले कर्म होते हैं और कुछ बुरे कर्म होते हैं। अगर हम पानी को उबाल कर पीना चाहते हैं तो उसमें कई सारे कीटाणु मर जाते हैं, परन्तु अगर हम यह सोच कर चलें कि वह उन के लिए हिंसा है, तो ऐसा सोचना गलत है। समग्रता का चिन्तन आवश्यक है।

हर कर्म क्रिया है और हर क्रिया कर्म है। जो भी हम कर रहे हैं उनसे फल की अपेक्षा न करें। वह दुःख का कारण होता है।

बच्चों को पालना हमारी जिम्मेदारी है। अगर अपेक्षा रखेंगे कि यह बड़ापे में सेवा करेगा तो वह दुःख का कारण है। अगर अपेक्षा नहीं रखेंगे तो वह कभी भी मिले, घर आए तो अच्छा लगेगा। बच्चों को पालना हमारा दायित्व है जो कि हमें भगवान ने दिया है और उस दायित्व को निभाना है। जो ऐसा सोचकर उनका पालन-पोषण करते हैं व फल की इच्छा नहीं रखते, वह दुःखी नहीं होते। फल की अपेक्षा करने वाला दुःखी रहता है इसलिए फल का त्याग करना बहुत आवश्यक है।

18.12

**अनिष्टमिष्टं(म्) मिश्रं(ञ्) च, त्रिविधं(ङ्) कर्मणः(फ़) फलम्।
भवत्यत्यागिनां(म्) प्रेत्य, न तु सत्यासिनां(ङ्) क्वचित्॥18.12॥**

कर्मफल का त्याग न करनेवाले मनुष्यों को कर्मों का इष्ट, अनिष्ट और मिश्रित - (ऐसे) तीन प्रकार का फल मरने के बाद (भी) होता है; परन्तु कर्मफल का त्याग करने वालों को कहीं भी नहीं होता।

विवेचन- कर्म का फल अच्छा भी हो सकता है, बुरा भी हो सकता है और मिश्रित भी हो सकता है। फल की अपेक्षा न करने वाले को अच्छा-बुरा या मिश्रित कोई भी फल नहीं मिलता। सारे कर्म करते हुए वह परम पद को प्राप्त होता है। कर्म के फल की इच्छा को न छोड़ पाना या उसका त्याग न करना, दुःख का कारण होता है। महिला मण्डल की अध्यक्ष बनी हुई किसी भी नारी को अगर अगली बार चुनाव में न चुना जाए तो उसे दुःख महसूस होगा क्योंकि वह उस कर्म फल से जुड़े रहते हैं, जिससे उसे कर्म के फल की इच्छा रहती है।

यज्ञ में आहुति देते समय-

'इदं न मम', यह मेरा नहीं है- कर्म फल का त्याग है।

आरती में भी हम कहते हैं-

**तन, मन, धन सब कुछ है तेरा
तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा।**

यही भावना हमारे अर्घ्य के समय होती है। सूर्य को जल अर्पित करते हुए वह नदी में ही मिल जाता है और अर्घ्य का पुण्य भी रहता है। कर्म के फल व उसकी आसक्ति का त्याग ही सात्त्विक त्याग है।

18.13

पञ्चैतानि महाबाहो, कारणानि निबोध मे।

साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि, सिद्धये सर्वकर्मणाम्॥18.13॥

हे महाबाहो ! कर्मों का अन्त करने वाले सांख्य-सिद्धान्त में सम्पूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिये ये पाँच कारण बताये गये हैं, (इनको तू मुझसे समझ।

विवेचन- आत्मा परमात्मा का एक अंश है। वह बीज रूप में व्यक्ति के अन्दर बैठा है।

भगवान कहते हैं,

अहं बीज-प्रदः पिता।

जिस तरह से आकाश में बादल नजर आते हैं पर उनसे ऊपर भी एक अवकाश है। एक आकाश है और एक अवकाश है। आकाश में बादल बहुत ऊपर जान पड़ते हैं। जब हम कभी जहाज से सफर करते हैं तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे बादल जहाज के नीचे हैं और हमारे ऊपर एक और आकाश है।

इसी तरह से आत्मा का एक और बड़ा स्वरूप है। आत्मा केवल बीज रूप है, जो प्रकृति के रूप में भगवान का प्रतिनिधि बना है। बसन्त में नए पल्लव के रूप में फैलता है। पञ्चभूत से सांसारिक चक्कर चल रहा है। जैसे नदी में पत्थर होते हैं। पत्थर नदी का हिस्सा हैं लेकिन नदी से पृथक् होते हैं। वैसे ही कर्म और आत्मा का परस्पर सम्बन्ध नहीं होता है।

18.14

अधिष्ठानं(न्) तथा कर्ता, करणं(ञ्) च पृथग्विधम्। विविधाश्च पृथक्चेष्टा, दैवं (ञ्) चैवात्र पञ्चमम्॥18.14॥

इसमें (कर्मों की सिद्धि में) अधिष्ठान तथा कर्ता और अनेक प्रकार के करण एवं विविध प्रकार की अलग-अलग चेष्टाएँ और वैसे ही पाँचवाँ कारण दैव (संस्कार) है।

विवेचन- भगवान कहते हैं कि परमात्मा का एक अंश आत्मा के रूप में व्यक्ति के अन्दर स्थित है जो सब कुछ देख रहा है।

इंसान के पाँच ऐसे तत्त्व हैं -यह कर्मों की सिद्धि में कारण बनते हैं।

अधिष्ठान- शरीर,

कर्ता- यानि जीव,

करण का अर्थ है माध्यम। पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ- आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा, पाँच कर्म इन्द्रियाँ- हाथ, पैर, मुँह, गुदा और लिङ्ग एवं अन्तःकरण- मन, बुद्धि व अहङ्कार माध्यम हैं।

प्रयास, चेष्टा और दैव- पूर्व जन्मों के संस्कार हैं। माता के स्तन तक बच्चे का पहुँचना उसके पूर्व जन्मों के संस्कार हैं। यह उसे कुछ भी सिखाया नहीं गया, उसे पहले से ही प्राप्त है। यह सब मिलकर व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार कर्म की रचना करते हैं।

18.15

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्, कर्म प्रारभते नरः।

न्याय्यं(म्) वा विपरीतं(म्) वा, पञ्चैते तस्य हेतवः॥18.15॥

मनुष्य, शरीर, वाणी और मन के द्वारा शास्त्रविहित अथवा शास्त्रविरुद्ध जो कुछ भी कर्म आरम्भ करता है, उसके ये (पूर्वोक्त) पाँचों हेतु होते हैं।

विवेचन- पञ्चभूत इस संसारिक चक्र को चला रहे हैं। पानी को अग्नि ऊष्णता देती है जिससे कि बादल बनते हैं। वायु, अग्नि, जल, आकाश और धरती सभी मिलकर अपना-अपना कार्य कर रहे हैं। यह सृष्टि इन्हीं पञ्चभूत के कारण से चल रही है। सब कर्मों की जिम्मेदारी आपकी है। लकड़ी को काटने के लिए लकड़ी की ही दण्डी बनती है। हीरे को तराशने के लिए हीरा ही काम आता है। लोहे को लोहे से ही धार लगती है।

कर्म; आधिष्ठान, कर्ता, करण, चेष्टा व पूर्व जन्म के संस्कार की प्रकृति से निर्धारित होते हैं।

इसी के साथ आज के सुन्दर, सरल विवेचन का प्रार्थना और हनुमान चालीसा पाठ के साथ समापन हुआ।

प्रश्नोत्तरी-

प्रश्नकर्ता- एस के त्रिपाठी भैया

प्रश्न- विकर्म की व्याख्या करें और आत्मा शरीर को छोड़कर कहाँ जाती है यह जानना चाहते हैं?

उत्तर- विकर्म विकृति की ओर ले जाते हैं। यह वह कर्म हैं जिन्हें बुद्धि करना नहीं चाहती और मन करना चाहता है, अन्त में बुद्धि हार जाती है और मन जीत जाता है। जैसे चोरों के मन से धीरे-धीरे चोरी का पाप नष्ट हो जाता है, यह विकर्म है। पञ्चमहाभूत में शरीर मिल जाता है और आत्मा अपने अहङ्कार, मन और बुद्धि वाले अन्तःकरण से अपना स्वर्ग और नरक भुगतने के बाद दोबारा उसी अन्तःकरण से किसी अगले शरीर में प्रवेश कर जाती है।

प्रश्नकर्ता- चित्रा दीदी

प्रश्न- पितृ पक्ष में सातवें अध्याय को पढ़ना महत्त्वपूर्ण है क्या?

उत्तर- यह सब चीजे ठीक हैं। कोई बोलता है, पहला अध्याय पढ़ना चाहिए, कोई आठवाँ अध्याय और कोई पन्द्रहवाँ अध्याय। पितरों को तर्पण के भाव से अर्पण करें। पितरों का स्मरण करना, यह महत्त्वपूर्ण है। उनके गुणों का स्मरण करना चाहिए। यह वास्तव में श्रद्धा है। श्रद्धा के साथ किया गया कार्य ही श्राद्ध होता है।

प्रश्नकर्ता- मदन भैया

प्रश्न- मच्छरों को मारना हिंसा होती है क्या?

उत्तर- मच्छरों से मलेरिया, डेङ्गू फैलता है। मच्छर आततायी होते हैं। उनको भगाना जरूरी है। उनकी हत्या करना, उससे अच्छा है उनको भगा देना। उनकी हत्या से मन खराब होता है इसलिए उनको भगाना उचित है।

प्रश्नकर्ता- मीता दीदी

प्रश्न- क्या ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं?

उत्तर- शबरी का भाव मन में रखें तो ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं। शबरी ने हर साँस में भगवान का नाम जपा। नामस्मरण का बड़ा महत्त्व होता है। शबरी नाम लेती रही, तो राम को आना ही पड़ा इसलिए शबरी का अनुकरण करें और भगवान का नाम लेते रहे।



हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

<https://vivechan.learngeeta.com/feedback/>

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

<https://gift.learngeeta.com/>

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

<https://vivechan.learngeeta.com/>

॥ गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ॥

॥ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥